राजस्थान की लोक संस्कृति : संगीत के संदर्भ में

○ डा. पामिल मोदी

महाकवि रविंद्र नाथ टैगोर के शब्दों में भारत महामानव सागर है, जिसमें अनेक धर्म, जाति एवं संस्कृतिया समाहित हैं। जो आपस में इस तरह घुल–मिलकर एकाकार हुई हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है[1]। भारत देश की सबसे बड़ी शक्ति अगर हम कह सकते हैं तो वह है भारत की विभिन्नता में एकता। जहां किसी भी नवीन संस्कृति को आत्मसात करने की क्षमता हम भारतीयों की प्रमुख विशेषता है।

भारत एक प्राचीन देश है और यहां की धरोहर में कला, संस्कृति रीति–रिवाज, परंपराएं अपने आप में एक अनूठी देन है। जब हम कला से संबंधित बात करते हैं तब हमें भारतीय संस्कृति और इसकी विभिन्न कलाओं का एक विशेष् रूप देखने को और समझने को मिलता है। पारंपरिक तौर पर भले ही संगीत, नृत्य, चित्र, शिल्पकार और साहित्य को पांच ललित कला में माना जाता है लेकिन प्रत्यक्ष तौर पर हमें विविध बातों एवं संस्कृतियों में कला मूल्य का एहसास होता है।

संगीत हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है, जिसे हम नकार नहीं सकते। जन्म से लेकर मृत्यु तक संगीत एक संस्कार के रूप में हमें प्राप्त होता है। मनुष्य, पशु–पक्षी और प्रकृति भी संगीत की सृष्टि करते हैं। पूरे ब्रह्मांड में इसीलिए ओंकार और नाद को न केवल स्वीकारा गया है, बल्कि इस पर कई शोध भी हुए हैं।

संगीत की अगर बात करें तो वह न केवल हमें आनंदित करता है बल्कि जीवन को जीने की कला और उसके सौंदर्य को भी दर्शाता है और साथ ही जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को भी प्रभावित करता है। भारतीय संगीत न केवल मनोरंजन का साधन है बल्कि इसका संबंध प्रकृति और मानव शरीर से भी रहा है। भारत के प्राचीन वेदों में भारतीय संस्कृति व जीवन के तौर तरीकों का वर्णन किया गया है और उसी में संगीत को सबसे उच्च कोटि और श्रेणी में माना गया है। संगीत का मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और सात स्वरों के संगम से मानव शरीर पर उसका विशेष प्रभाव देखा जा सकता है। वेदों में शरीर के सात चक्र का वर्णन किया गया है जो हमारे शरीर के विभिन्न भागों का संचालन करते हैं। इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि संगीत न केवल आनंद की अनुभूति करवाता है अपितु हमें संयम, धैर्य, शांत, ऊर्जावान और एक सहज इंसान भी बनाता है।

भारत देश दुनिया भर में सबसे अधिक विविधतापूर्ण वाला भौगोलिक प्रदेश माना जाता है। इसके अनेक कारण हैं। कुछ कारण प्राकृतिक हैं वैसे ही कुछ मानव समाज और सभ्यता से जुड़े हुए हैं। यहां भिन्न–भिन्न प्रकृति, स्वभाव एवं मानव समुदाय की सभ्यताएं अस्तित्व में हैं। इन समुदायों की अनेकानेक संस्कृतियों, सैकड़ों भाषाओं, हजारो कलाओं का समावेश है[2]। भौतिक विकास, प्रगति एवं सभ्यता के ही अनुरूप संस्कृति भी अपना नया स्वरूप ग्रहण करती चलती है। प्रगति के पथ पर संस्कृति मानव निर्मित होती है लेकिन अंततः मनुष्य का जीवन प्रकृति पर ही पूर्ण रूप से आश्रित होता है। इसलिए यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि प्रकृति के तत्व से संस्कृति का जुड़ाव महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। प्रकृति से लगाव और मानव परिकल्पना के कारण संस्कृति का स्थान प्रकृति एवं कृत्रिमता के मध्य कहीं होता है। अतः हम यह देख सकते हैं कि जिन मानव समुदायों की संस्कृति का स्थान प्रकृति के निकट और उनसे जुड़ी हुई होती है वही विकसित भी होती हैं, जिस कारण वह सौंदर्यबोध, आनंददायक एवं कल्याणकारी होती है।

विभिन्न प्रकार की संस्कृतियां, कलाएं और सभ्यताएं जब परस्पर आपस में एक दूसरे के संपर्क में आती हैं तो वह निश्चित तौर पर एक आदान–प्रदान की स्थिति को उत्पन्न करती हैं। इस प्रक्रिया में एक दूसरे से न केवल सीखने की दृष्टि से बल्कि विभिन्न सभ्यताओं और कलाओं का विकास भी होता है।

इसी प्रकार से विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के बीच में लोक संस्कृति का भी एक दर्पण होता है। लोक संस्कृति के माध्यम से व्यक्ति अपने भावों तथा जीवन विषयों के संदर्भ में जब भी कुछ नया देखता है तो वह असीम सुख को महसूस करता है और साथ ही वह यह भी महसूस करता है कि वह लोक समूह का एक अंग है। अपने समूह के बीच रहते हुए एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़कर मानो अपनेपन से जुड़ जाता है। त्यौहार, विवाह, सुख–दुख की घड़ी में संगीत और लोक साहित्य के माध्यम से अपने आपको पूर्ण समझता है। लोक साहित्य से हम उस जाति अथवा देश–विदेश की सांस्कृतिक परंपरा तथा उनका रूपात्मक परिवर्तन, आदर्श देव तीर्थ स्थान, पवित्र एवं मंगल प्रसंगों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय लोक साहित्य का इतिहास शास्त्रीय संगीत से भी पुराना है और इसका अपना एक विशेष महत्व है। अगर हम भारत की लोक संस्कृति के बारे में बात करें तो राजस्थान की लोक संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है। भारत के क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान प्रदेश सबसे बड़ा राज्य माना गया है क्योंकि इसकी सीमाएं पश्चिम में पाकिस्तान, दक्षिण पश्चिम में गुजरात, दक्षिण पूर्व में मध्य प्रदेश, उत्तर में पंजाब, उत्तर पूर्व में उत्तर प्रदेश और हरियाणा है। राजस्थान प्रदेश के नाम से ही यह समझा जा सकता है कि यह "राजाओं का स्थान" माना जाता है क्योंकि यह भूमि राजाओं से रक्षित भूमि थी। राजस्थान को रंगीलो राजस्थान के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसकी संस्कृति बहुत अनोखी और रोचक रही है। इस प्रदेश की संस्कृति की झलक राज्य के रंगीन इतिहास में भी दिखाई देती है। राजस्थान के लोक नृत्य, लोक संगीत, व्यंजन इत्यादि के माध्यम से यहां की जीवन की संस्कृति का सार भी दिखाई देता है। राजस्थान अपनी भव्यता, संस्कृति, परंपराओं और वीर शौर्य गाथाओं के कारण पूरे देश में जाना जाता है।

राजस्थान की लोक संस्कृति की विरासत काफी धनवान है। किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के त्यौहार, पर्व, रीति रिवाज और उनकी मान्यताएं आदि को लोक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक और संस्कृति में शब्दों का मेल है, यानी लोक जिसमें संसार के मानव का अस्तित्व समाया हुआ है, जिसमें

व्यक्ति विशेष की पहचान न होकर सामूहिक पहचान होती है। विभिन्न समुदायों के अपने–अपने पर्व, अपनी–अपनी परंपराएं होती हैं और इन सभी का मिलाजुला रूप ही लोक कहलाता है। विभिन्न समुदायों की मिली–जुली संस्कृति ही लोक संस्कृति कहलाती है।

हर प्रदेश और हर समुदाय की अपनी अलग वेशभूषा, खानपान, रहन–सहन, नृत्य, गीत, भाषा, कला अलग–अलग होती है। परंतु लोक संस्कृति ही इन सब अलग–अलग मोतियों को एक माला में पिरोने का काम करती है। एक पीढ़ी से लेकर दूसरी पीढ़ी तक हर जगह के, एवं हर समुदाय के लोग अपनी लोक संस्कृति की रक्षा करते हैं और साथ ही वह अपने रीति रिवाज और परंपराओं का पालन भी करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है, क्योंकि कोई भी देश या राज्य हो उसकी पहचान, उसकी संस्कृति और कला से ही होती है। बदलते समय के साथ–साथ इन संस्कृतियों में भी काफी परिवर्तन आया है, इसीलिए हम लोक संस्कृति को परिवर्तनशील और गतिशील भी कह सकते हैं।

संगीत एक ऐसी कला है, जो प्रत्येक देश को, प्रदेश को और यहां तक कि मनुष्य को एक दूसरे के साथ जोड़ कर रखती है, क्योंकि संगीत से हम अपने मनोभावों को प्रकट करते हैं। किसी भी समुदाय की लोक संस्कृति को अगर कोई जीवित रखता है तो वह होता है वहां का लोक संगीत। किसी भी समुदाय के लोक संगीत को जब हम सुनते हैं तो हमें उस समुदाय और उस समाज की झलक देखने को मिलती है। लोकगीतों में वहां के पर्व और उनकी परंपराओं की गूंज सुनाई देती है। लोक संगीत का अर्थ यही है कि उसे आमजन के समाज का संगीत कहा जाता है।

लोकगीत–लोकगीत वह गीत है, जिसे कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा समुदाय अपनाता है। जब इन लोकगीतों की रचना को हम सुनते हैं तो हम यह महसूस करते हैं कि उन गीतों का केंद्रबिंदु उनका आम जीवन होता है और ये गीत पूरी तरह से लोक को ही समर्पित होते हैं। ये लोकगीत शास्त्रीय नियमों में बंधे हुए नहीं होते हैं बल्कि सिर्फ आनंद की अनुभूति के लिए इन लोकगीतों की रचना की जाती है। उदाहरण के तौर पर हमें विभिन्न प्रकार के लोकगीत सुनने को मिलते हैं जैसे संस्कार गीत, गाथा गीत या लोकगाथा, पर्व गीत, पेशा गीत, जातीय गीत इत्यादि।

संस्कार गीत वह गीत कहलाए जाते हैं जो बच्चों के जन्म, मुंडन, जनेऊ, पूजन और विवाह के समय गाए जाते हैं। गाथा गीत उन गीतों को कहा जाता है, जो विभिन्न क्षेत्रों की प्रचलित लोक गाथाओं से संबंध रखते हैं। राज्य में किसी विशेष पर्व एवं त्योहारों के समय पर गाए जाने वाले गीतों को पर्व गीत कहा जाता है। पेशा गीत उन गीतों को कहा जाता है जो व्यक्ति अपने विभिन्न पेशे में अपना कार्य करते समय गीतों को गाते हैं, जैसे गेहूं पीसने वक्त, फसल को बोते समय, गायों को चराते हुए, फसल की कटाई करते वक्त इत्यादि। हर राज्य की अपनी अलग–अलग जातियां होती है जो अपने समाज के अनुकूल अपने गीत गाती हैं। इन्हीं गीतों को जातीय गीत कहा जाता है, जिसे सुनकर हमें यह पता चलता है कि यह कौन सी जाति के लोक गीत हैं।

राजस्थान के उत्तरी भाग के विभिन्न क्षेत्रों में कई प्रकार की लोक गायकी विकसित हुई, जो कि शास्त्रीय संगीत की तरह शास्त्रीय रागों पर आधारित है। इनमें कुछ जो प्रमुख गायकी प्रचलित हुई वह है मांड गायकी, मांगणियार गायन शैली, लंगा गायन शैली, ताल बंधी गायन शैली, हवेली संगीत गायन शैली।

मांड गायकी–10वीं–11वीं शताब्दी में जैसलमेर क्षेत्र को मांड क्षेत्र के नाम से जाना जाता था इसीलिए यहां पर मांड शैली विकसित हुई। यह एक शृंगार रसात्मक राग है जिसमें जैसलमेरी मांड, बीकानेरी मांड, जोधपुरी मांड आदि मशहूर है। इस शैली की प्रमुख गायिका हैं–अल्लाह जिला बाई, गवरी देवी, मांगी बाई, जमीला बानो, बन्नो बेगम।

मांगणियार गायन शैली:–यह मांगणियार जाति के लोगों के द्वारा गाए जाने वाली सबसे लोकप्रिय गायन शैली है, जो पश्चिमी राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्र बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर क्षेत्र में गाई जाती है। यह गायकी मुस्लिम जाति जो कि मूलतः सिंध प्रांत से है, उनके द्वारा गाई जाती है। इस लोक गायन शैली में प्रमुख 6 राग और 36 रागिनियों का प्रयोग होता है। इस गायन शैली में कमायचा और खड़ताल प्रमुख लोक वाद्य यंत्र प्रयोग में आते हैं। सदीक खान मांगणियार प्रसिद्ध खड़ताल वादक और साकर खान मांगणियार प्रसिद्ध कमाइचा वादक हैं।

लंगा गायन शैली:–इस गायकी को गाने वाले गायक प्रमुख रूप से जैसलमेर एवं बाड़मेर जिलों में निवास करते हैं। इस गायन शैली में मुख्य रूप से कमाइचा और सारंगी लोक वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है और अलाउद्दीन खान लंगा और करीम खान लंगा इस शैली के मशहूर गायक हैं।

ताल बंधी गायन शैली:–राजस्थान के पूर्वी जिले भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, करौली में यह गायन शैली प्रमुख है। गायन शैली में राग रागिनी से निबद्ध प्राचीन कवियों की पदावली गाई जाती है और इसी कारण से इस गायकी को ताल बंधी गायकी कहा जाता है। इस गायकी में वाद्य यंत्रों के रूप में हारमोनियम और तबला का प्रयोग किया जाता है।

हवेली संगीत गायन शैली:–माना जाता है कि औरंगजेब के समय में बंद कमरों में हवेली संगीत विकसित हुआ। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के कारण भगवान श्रीनाथजी के स्वरूप को इसीलिए राजस्थान के नाथद्वारा में लाया गया था। मूर्तियों को बचाने व सुरक्षित रखने के लिए ही मंदिरों से हटाकर इन मूर्तियों को हवेलियों में सुरक्षित रखा गया था और वहीं पर ही पूरी विधि विधान के साथ इन मूर्तियों की पूजा–अर्चना की जाती थी। भगवान श्रीनाथजी के स्वरूप को राजस्थान के नाथद्वारा में ले जाने के कारण हवेली संगीत का प्रधान केंद्र नाथद्वारा माना जाता है और इन हवेलियों में विग्रह स्थापना और अष्टयाम सेवा होने के कारण अष्टछाप संगीत को हवेली संगीत भी कहा जाता है।

लोकगीतों के अलावा राजस्थान के लोक नृत्य पारंपरिक एवं मनोरंजक होते हैं। यह नृत्य न केवल उत्सव को जीवंत कर देते हैं बल्कि उतने ही मनुष्य को आकर्षित भी करते हैं। राजस्थान के लोक नृत्य में विभिन्न लोक नृत्य आते हैं जिसमें प्रमुख क्षेत्रीय लोक नृत्य के अंतर्गत बम लोक नृत्य, ढोल लोक नृत्य, गैर लोक नृत्य, अग्नि लोक नृत्य, लांगुरिया लोक नृत्य आते हैं।

राजस्थान के जातीय, सामाजिक एवं धार्मिक लोक नृत्य के अंतर्गत कालबेलिया लोक नृत्य, पणिहारी लोक नृत्य, चरी लोक नृत्य, गवरी लोक नृत्य, मावलिया लोक नृत्य, घूमर नृत्य, भवाई लोक नृत्य, तेरहताली लोकनृत्य, कच्ची घोड़ी लोक नृत्य एवं कठपुतली नृत्य आते हैं।

बम लोक नृत्यः–बड़े नगाड़ों की थाप पर पुरुषों द्वारा ये नृत्य किया जाता है और नगाड़ों के साथ थाली, चिमटा, ढोलक, मंजीरा एवं खड़ताल का प्रयोग किया जाता है। यह नृत्य अधिकतर रसिया गानों पर किया जाता है इसीलिए इसे बम रसिया भी कहते हैं। राजस्थान के भरतपुर एवं अलवर क्षेत्र में नई फसल आने की खुशी में इस क्षेत्र के लोगों द्वारा इस नृत्य को किया जाता है।

ढोल लोक नृत्यः–जालौर क्षेत्र में सांचलिया संप्रदाय में विवाह के अवसर पर सरगड़ा, माली आदि जाति के पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है, जिसमें नृत्यकार अपने मुंह में तलवार, हाथों में डंडा लेकर और भुजाओं में रुमाल लटकाते हुए चार या पांच ढोल की थाप के साथ में नृत्य करते हैं।

गैर लोक नृत्यः–इस नृत्य को होली के दूसरे दिन से आरंभ किया जाता है और 15 दिनों तक यह नृत्य किया जाता है। इस नृत्य को करने वाले नृत्यकार गैरिया कहलाते हैं। इस नृत्य को गोल घेरे में किया जाता है और पुरुष एक साथ मिलकर गोल घेरे में नृत्य करते हुए अलग–अलग तरह के मंडल बनाते हैं। यह लोकनृत्य बाड़मेर एवं मेवाड़ क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक नृत्य माना जाता है। यह नृत्य भील जाति की संस्कृति को प्रदर्शित करता है।

अग्नि लोक नृत्यः–इस नृत्य को धधकती हुई आग के साथ में किया जाता है। अग्नि नृत्य बीकानेर के पथरिया सर ग्राम में जसनाथी सिद्ध अंगारों पर फतेह का उद्घोष करते हुए नृत्य को करते हैं। इस नृत्य के प्रमुख आकर्षण हैं मतीरा फोड़ना, दांतों से अंगारों को पकड़ना, हल जोतना इत्यादि।

लांगुरिया लोक नृत्यः–सामूहिक तौर पर स्त्री और पुरुषों द्वारा किया जाने वाला यह नृत्य करौली में कैला देवी के मेले में हनुमान जी के लोक स्वरूप को दर्शाते हुए इस नृत्य को किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि करौली की कैला मैया हनुमान जी की मां अंजना का अवतार है। इस नृत्य को करते समय नफीरी एवं नौबत बजाई जाती है। किसी विशिष्ट जाति द्वारा किए गए लोक नृत्य को राजस्थान में जातीय लोकनृत्य कहा जाता है।

कालबेलिया लोक नृत्यः–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिप्राप्त यह नृत्य सभी संगीत प्रेमियों को अत्यंत लुभाता है और विशेष तौर पर विदेशी पर्यटक इस नृत्य का विशेष आनंद उठाते हैं। मारवाड़ अंचल का यह काफी लोकप्रिय नृत्य है जिसे सपेरा जाति द्वारा किया जाता है। नृत्य में शरीर की लोच, और ताल का मंत्रमुग्ध करने वाला संगम देखने को मिलता है। संगत के तौर पर कालबेलिया नृत्य के साथ पुंगी और चंग बजाया जाता है और जैसे–जैसे चंग पर थाप तेज होती है, नृत्यांगना भी अपने पैरों की गति को बढ़ाती जाती है। नृत्य के साथ महिलाएं लोक पारंपरिक गाथा को गीत के रूप में गाती है और इस नृत्य को दो बालाएं या महिलाओं द्वारा किया जाता है। सुप्रसिद्ध कालबेलिया नृत्यांगना पद्मश्री गुलाबों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस नृत्य को विशेष पहचान दी है।

शंकरिया लोक नृत्यः–राजस्थान की संस्कृति को प्रदर्शित करने वाला यह लोक नृत्य प्रेम कथाओं पर आधारित है। प्रेम कथाओं पर आधारित होने के कारण इस नृत्य को पुरुष एवं महिलाओं द्वारा किया जाता है। महिलाओं और पुरुषों द्वारा सुंदर अंगों का संचालन करते हुए यह नृत्य काफी दर्शनीय भी होता है।

चरी लोक नृत्यः–राजस्थान के गुर्जर एवं सैनी समुदाय की महिलाओं द्वारा इस नृत्य को किया जाता है। किशनगढ़ एवं अजमेर क्षेत्र में यह नृत्य काफी लोकप्रिय है और फलकू बाई इस नृत्य की सबसे प्रसिद्ध नृत्यांगना भी है। राजस्थान में पानी की कमी के कारण महिलाओं को मीलों दूर तक पैदल चलकर जाना पड़ता है, यह लोक नृत्य इसी बात को दर्शाता है। नृत्य करते वक्त महिलाएं अपने सर पर पीतल की चरी रखती हैं और उसमें तेल में डूबे हुए कपास को प्रज्वलित किया जाता है। सामूहिक रूप से संतुलन बनाकर अपने हाथ, कमर एवं पैरों का सुंदर संचालन करते हुए नृत्यांगना गोल घेरे में नृत्य करती रहती है। यह नृत्य हारमोनियम, थाली, ढोल, ढोलक और नगाड़ा जैसे वाद्य यंत्रों के साथ में किया जाता है।

गवरी लोक नृत्यः–उदयपुर संभाग के भूमि क्षेत्र में भीलों द्वारा किए जाने वाला यह भील जाति का सामाजिक एवं धार्मिक नृत्य है, जिसे सावन भादो में किया जाता है। इस नृत्य को गवरी के नाम से इसलिए जाना जाता है क्योंकि नृत्य के प्रमुख पात्र भगवान शिव एवं मां पार्वती हैं। नृत्य में शिव को पूरिया कहा जाता है और नृत्य का मुख्य आधार शिव एवं भस्मासुर की कथा है। मेवाड़ अंचल के डूंगरपुर, बांसवाड़ा, भीलवाड़ा, उदयपुर एवं सिरोही में यह अत्यधिक प्रचलित है।

मावलिया लोक नृत्यः–नवरात्रि के विशेष 9 दिनों तक यह नृत्य पुरुषों द्वारा किया जाता है। देवी–देवताओं के गीत गाते हुए सामूहिक रूप से 10–12 पुरुष गोल–गोल घूम कर नृत्य करते हैं। ढोलक, टापरा और बांसुरी जैसे वाद्य का प्रयोग इस नृत्य में किया जाता है।

घूमर नृत्यः–भारत देश के लोक नृत्य में घूमर अत्यंत लोकप्रिय है। यह नृत्य केवल स्त्रियों द्वारा ही किया जाता है और इस नृत्य को करते समय महिलाएं लंबा घेरदार घाघरा और रंगीन चुनरी पहनती है। गणगौर, होली, दुर्गा पूजा एवं नवरात्र में विशेष रूप से महिलाएं इस नृत्य को गोल घेरे में घूम कर करती है। राजस्थान का राज्य नृत्य बनकर इसने अपनी एक विशेष पहचान हासिल की है।

भवाई लोक नृत्यः–राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस नृत्य को विशेष पहचान दिलाने का श्रेय राजस्थान के मशहूर भवाई नृत्य रूप सिंह शेखावत का है। भवाई जाति द्वारा सर पर कई मटकी रखकर संतुलन बनाते हुए नृत्य की अदायगी और शारीरिक मुद्रा को बेहद खूबसूरत ढंग से प्रदर्शित किया जाता है। इस नृत्य की विशेषता यह है कि महिला एवं पुरुष सिर पर 8–10 मटके के साथ–साथ गिलास और थाली पर संतुलन बनाते हुए कांच के टुकड़ों पर खड़े होकर नृत्य करती हैं।

तेरह ताली लोक नृत्यः–पाली, नागौर एवं जैसलमेर जिले की कामड़ जाति की महिलाएं शरीर पर 13 मंजीरे बांधकर बाबा रामदेव के भजन के साथ लयबद्ध होकर मंजीरे बजाती हुई इस नृत्य को प्रस्तुत करती हैं। महिलाएं नो मंजीरे दाएं पांव पर, दो हाथों की कोहनी के ऊपर और एक–एक दोनों हाथों में बंधे हुए मंजीरो पर प्रहार करते हुए उत्पन्न मधुर ध्वनि के साथ मनमोहक नृत्य प्रस्तुत करती हैं। मांगी बाई और लक्ष्मण दास कामड़ तेरहताली नृत्य के प्रमुख कलाकार हैं।

कच्ची घोड़ी लोक नृत्यः–राजस्थान के शेखावटी क्षेत्र से इस नृत्य का आरंभ माना गया है। यह नृत्य पेशेवर जातियों द्वारा पुरुष वर्ग अपनी कमर पर बांस की घोड़ी को बांधकर लसकरिया, रसाला, बिंद और रंग भरिया गीत गाते हुए इस नृत्य को करते हैं। यह नृत्य विशेष रूप से विवाह एवं मांगलिक अवसरों पर व्यवसायिक मनोरंजन के तौर पर किया जाता है। कुम्हार, ढोली, भांबी जातियां इस नृत्य में

प्रवीण मानी जाती हैं।

कठपुतली नृत्यः—कठ यानी लकड़ी और पुतली यानी लकड़ी की बनी गुड़िया को तारों के माध्यम से नृत्य करवाया जाता है। यह नृत्य नट जाति द्वारा किया जाता है। काले कपड़े के पर्दे के पीछे से हाथ की उंगलियों की सहायता से इन कठपुतलियों को विभिन्न लोक गीतों एवं संगीत की धुनों पर नचाया जाता है। कठपुतली का खेल दिखाने वाले कठपुतली भाट स्वयं ही इन पुतलियों का निर्माण करते हैं।

मानव संस्कृति की उत्पत्ति के साथ ही वाद्य यंत्रों की भी उत्पत्ति हो गई थी। किसी भी गीत को सुमधुर बनाने में वाद्य यंत्रों की एक अहम भूमिका होती है। गायन और नृत्य में संगत के रूप में विभिन्न प्रकार के वाद्यकरणों का उपयोग किया जाता है। वाद्य यंत्रों की चार श्रेणी में घन, सुशीर, तत और अवनध वाघ, संगीत की गायन और नृत्य शैली में अहम भूमिका निभाते हैं। वाद्य यंत्रों के विकास में तत्कालीन संस्कृति और समाज का भी प्रभाव पड़ा है इसीलिए समय के साथ—साथ उनमें भी कई परिवर्तन आए हैं। राजस्थान के लोकगीत और नृत्य के साथ में विभिन्न प्रकार के वाद्यों की संगत में जैसे रावण हत्था, सारंगी, रबाब, कमाइचा, भपंग, इकतारा, तंदूरा, मोरचंग, शहनाई, अलगोजा इत्यादि प्रयोग में लाए जाते हैं।

रावण हत्थाः—इस वाद्य यंत्र को नारियल से बनाया जाता है, जहां पर नारियल को काट कर उस पर चमड़े की खाल को मढ़ दिया जाता है। पाबूजी की फड़ पूरे राजस्थान में विख्यात है जिसे भोपे गाकर सुनाते हैं और यह वाद्य इसीलिए भोपों का प्रमुख वाद्य यंत्र माना गया है। यह गीत रावण हत्था पर गाए जाते हैं और इसकी बनावट सारंगीनुमा होती है।

सारंगीः—27 तारों वाले इस वाद्य यंत्र को बकरे की आंत से बनाया जाता है। मिरासी, मांगणियार, जैसलमेर की लंगा जाति के कलाकार सारंगी के साथ ही गायन और नृत्य करते हैं। तत वाद्य यंत्रों में सारंगी सबसे सर्वश्रेष्ठ वाद्य यंत्र है जिसका निर्माण सागवान, रोहिड़ा तथा खैर की लकड़ी से किया जाता है।

रबाबः—इस वाद्य यंत्र का उल्लेख अहोबल कृत संगीत परिजात नामक ग्रंथ में मिलता है। इस वाद्य में तारों की संख्या 3 से 7 तक होती है और इसे जवा के साथ बजाया जाता है। इस वाद्य की लोकप्रियता अलवर क्षेत्र में ज्यादा है।

कमायचाः—यह वाद्य यंत्र भी सारंगी की तरह ही होता है और जैसलमेर एवं बाड़मेर के मांगणियार कलाकार इस वाद्य का प्रयोग गायन के समय करते हैं। यह वाद्य यंत्र रोहिड़ा या आक की लकड़ी से बनाया जाता है।

भपंगः—यह वाद्य डमरू की तरह एक देसी साज होता है। राजस्थान के मेवात इलाके में यह वाद्य यंत्र अत्यंत लोकप्रिय है। इसकी बनावट कटे हुए तूम्बे से की जाती है और जिसके एक सिरे को चमड़े से मढा जाता है। जहूर खान मेवाती को भपंग का जादूगर माना जाता है।

इकताराः—इस वाद्य यंत्र को भगवान नारद मुनि का वाद्य यंत्र माना जाता है और राजस्थान में कालबेलिया, नाथ साधु एवं सन्यासी द्वारा बजाया जाता है। यह एक प्राचीन वाद्य है और इस वाद्य यंत्र को उंगली से बजाया जाता है तथा बजाने में एक ही हाथ का प्रयोग किया जाता है।

तंदूराः—इस वाद्य में 4 तार होने के कारण कहीं—कहीं इसे चौतारा के नाम से भी कहा जाता है। बाबा रामदेव जी के भोपे इस वाद्य का प्रयोग करते हैं जो तानपुरे से काफी मिलता—जुलता वाद्य है। यह वाद्य पूरी लकड़ी का बना हुआ होता है।

मोरचंगः—मोरचंग वाद्य लंगा गायक समुदाय का पारंपरिक वाद्य यंत्र है। राजस्थान में यह वाद्य काफी लोकप्रिय है और इसमें से मधुर ध्वनि निकलती है जो सुनने वालों को बेहद आकर्षित करती है। यह लोहे का काफी छोटा कैंची की तरह दिखने वाला वाद्य यंत्र है। इसे दांतों के बीच में रखकर बाएं हाथ से पकड़ा जाता है और दाएं हाथ की उंगली से बजाते हुए सांसों को जब अंदर—बाहर किया जाता है तो इसमें एक आकर्षित ध्वनि निकलती है।

शहनाईः—यह वाद्य न केवल लोक गीतों के साथ प्रयोग में आता है बल्कि इस वाद्य का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में भी किया जाता है। इस वाद्य का निर्माण शीशम या सागवान की लकड़ी से किया जाता है और इसकी आकृति चिलम के समान होती है। विवाह के शुभ अवसर पर नगाड़े की संगत के साथ इसे बजाया जाता है। उस्ताद बिस्मिल्लाह खान हिंदुस्तान के मशहूर शहनाई वादक थे।

अलगोजाः—अलगोजा को राणा का फकीरों का वाद्य कहा जाता है। इसे केयर या बांस की लकड़ी से बनाया जाता है और दिखने में यह बांसुरी की तरह होता है। इसमें दो बांसुरी सम्मिलित रूप से जुड़ी हुई होती है और प्रत्येक बांसुरी में चार छेद होते हैं। इस वाद्य की खासियत यह है कि वादक दोनों अलगोजे को मुंह में रखकर एक साथ बजाता है। एक अलगोजे पर वादक स्वर कायम करता है तो दूसरे को बजाता है।

राजस्थान के प्रमुख अवनध वाद्यों में नगाड़ा, मांदल, नौबत और पाबूजी के माटे लोकप्रिय हैं।

नगाड़ाः—नगाड़ा दो प्रकार के होते हैं— छोटा और बड़ा। बड़े नगाड़े को बड़े भारी डंडों से बजाया जाता है। इसे बम, टापक आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका प्रयोग युद्ध के समय किया जाता था और वर्तमान समय में रामलीला, नौटंकी एवं मांगलिक अवसरों पर भी इसे बजाया जाता है।

मांदलः—मृदंग की तरह इस वाद्य की आकृति गोल घेरे जैसे होती है और यह मिट्टी से बनाया जाता है। इस वाद्य का प्रयोग प्रमुख रूप से गरासिया जातियों द्वारा किया जाता है और मेवाड के देवरो थाली के साथ बजाया जाता है।

नौबतः—इस वाद्य को अक्सर मंदिरों और राजा—महाराजाओं के महल के मुख्य द्वार पर बजाया जाता था। इसे धातु की लगभग 4 फीट गहरी अर्ध अंडाकार कुंडी को भैंसे की खाल से मढकर बनाया जाता है और साथ ही चमड़े की डोर से उसे कस दिया जाता है।

पाबूजी के माटेः—इस वाद्य यंत्र को मिट्टी से बनाया जाता है और इसकी आकृति मटके के समान होती है। यह वाद्य यंत्र मुख्य रूप से चूरू, बीकानेर, सीकर, जयपुर और नागौर क्षेत्र में पाबूजी व माताजी के पावड़े गाते समय बजाया जाता है। इस वाद्य यंत्र मे दो मटको के मुंह पर चमड़ा चढ़ाया जाता है। उसे किनारों से फिर चिपकाकर ऊपर से डोरी बांध दी जाती है। इन दोनों माटो में एक माटा नर एवं एक मादा होता है। इसका वादन हथेली एव उंगली के प्रहार से किया जाता है और दोनों में से स्वर भी अलग—अलग निकलते हैं।

कल्पना करना एवं अनुकरण करना मानव की सहज प्रवृत्तियां है। मानव के अवचेतन में संचित संस्कार उसे इसके लिए निरंतर प्रेरित करते रहते हैं और इन्हीं के द्वारा मनुष्य नवीन सृजन में सफलता प्राप्त करता है। नई—नई कल्पनाओं के आधार पर विज्ञान के आविष्कार होते हैं। कला के क्षेत्र में भी नई—नई विधाओं का जन्म होता है। समय के अनुकूल परिवर्तन

होते रहते हैं और सृष्टि में एक प्रकार की ताजगी बनी रहती है। काव्य, गीत, नृत्य, अभिनय, मूर्ति, संगीत एवं सभी ललित कला में भी समय–समय पर नई उद्भावनाएं होती रहती हैं। इन्हीं के द्वारा भाव संसार को अभिव्यक्ति मिलती है तो सृजन का आनंद भी मिलता है[4]।

विश्व की अन्य संस्कृतियों की तुलना में भारतीय संस्कृति अपने आपमें संपूर्णतया अलग है। आज जो पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर दिखाई देता है, वह उसका बाहरी आवरण है, जो कुछ क्षणों में झड़ने वाला है। भारतवासियों के मन पर प्रारंभ से ही देवी–देवताओं के संस्कार हैं, जो अमिट हैं। हम जितना ही आधुनिकता का ताना–बाना बुनने का प्रयास करें, इन संस्कारों की कभी भी कम होने की संभावना नहीं है[5]।

कोई भी समुदाय हो, कोई भी देश हो, कोई भी प्रदेश हो, उसकी लोक संस्कृति उस प्रदेश के सामान्य जीवन का एक विशेष अंग होती है। इस लोक संस्कृति में लोक गीत, लोक वाद्य, लोक नृत्य आदि सभी विधाओं का समावेश होता है, जिन्हें हम लोक संस्कृति के नाम से जानते हैं। इस आलेख का अभिप्राय विशेष रूप से यही है कि राजस्थान की जो लोक संस्कृति है और खासतौर से संगीत से संबंधित जो लोक नृत्य हैं, जो लोक वाद्य हैं, जो लोक संगीत हैं, उन्हीं के बारे में थोड़ा विस्तृत रूप से अध्ययन कर अवगत कराना था। उम्मीद है इस आलेख में जो कुछ भी लिखा गया है, वह आप सभी के लिए उपयोगी होगा। इसे विस्तृत रूप से लिखने की कोशिश की गई है, फिर भी कई तथ्यों का समावेश नहीं हो पाया है, उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं।

संदर्भ

1. भारतीय संस्कृति का मूल आदिवासी संस्कृति–डॉ. शारदाः–रंगायन पंजीयन संख्या 10436/67 वर्ष 2020
2. लोक एवं आदिवासी कलाओं में अंतर संबंध–डॉ. वीरा राठौड़ः–रंगायन पंजीयन संख्या 10436/67 वर्ष 2020
3. राजस्थान का लोक संगीत–डॉ. रेनू श्रीवास्तवः–हिमांशु पब्लिकेशन, नई दिल्ली ISBN 978–81–7906–841–0 वर्ष 2020
4. राजस्थानी राग रस रंग–डॉ. रामेश्वर आनंद सोनीः–राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, राजस्थान ISBN 978–81–89302–33–7 वर्ष 2016
5. आदिम संस्कृति का मूल आधार भारतीय संस्कृति–डॉ. हरीश चंद्र बोरकरः–रंगायन पंजीयन संख्या 10436/67 वर्ष 2020

प्रभारी–विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
संपर्क : ए–501, वल्लभ इम्पायर, न्यू नवरतन काम्पलेक्स, मेवाढ़ हास्पिटल रोड, उदयपुर–313001
मो. : 8005854900

कलावसुधा

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक

"कला वसुधा का वेब अंक आप Not Nul (www.notnul.com) पर पढ़ सकते हैं।"

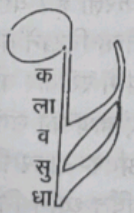

R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035 ISSN-2348-3660

कला वसुधा पत्रिका प्राप्ति/सदस्यता हेतु संपर्क करें–
सम्पादकीय ठिकाना : *कला वसुधा* 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ – 226029
ई–मेल : kalavasudha01@gmail.com
मो0 : 8052557608, 9889835202

वेबसाइट : https://www.kalavasudha.com